□ पीपल · तीन

तुम्हारे अंकुरित मौन में
समायी थी
पृथ्वी के नाभि-चक्र से जन्मी
बावन अक्षरों के सान पर चढ़ी वर्णमाला
गौरांग बाहों में उठाये
हरियर हवा के सूत में
रुद्र-ललित हंस की माला

पक्षी ले जाते
हवा के रक्तवाही कोटरों में
अंधेरे को कुचलते
दूध की धारा बहाते
तुम चले जाते कंगूरों को भेदते
संधियों से झाँकते
धराशायी करते दंभ के थाले में खड़े
गर्वीले दुर्ग को

पक्षी ले जाते
शिखर की ऊँचाइयों पर
वज्र-जैसे वक्ष को अपनी जड़ों से भेदते
सजे रहते मुकुट बन
किरणों से चमकते भाल पर

पक्षी ले जाते
नदी के कटते अड़ार में
नृत्य की सजीली भंगिमाओं
और हवा में झूलती अपनी जड़ों के सहारे
तुम उतर जाते भँवर में
नील नदी की टूटती लहरों को बचाने

अभिशप्त, टूटे, भग्न खण्डहरों में
प्रेतात्माओं के मध्य
छतों की दानव-दीवारों पर टिका कर पाँव
तुम बनाते
छाया की छतनार छत
श्वेत किरणों की तीलियों से
प्यार का पिंजरा बनाते
लाल-काले पक्षियों के साथ

धधकती धूप में जलतीं
ढेर-सारी मृतात्माएँ
धूप-बत्ती की तरह चरणों पर तुम्हारे
कण्ठ में लटके
प्रेत के उस घण्ट से

धार फूटती मुक्ति की
धुएँ की धार बाँहों में समेटे
चले जाते
उन्हें संध्या-सरोवर में सिराने

तीन

मरी हुई इस बस्ती में
लौट रहा जीवन अब धीरे-धीरे

तुमने बढ़ा दिया अपना एक हाथ
उनके लिए
जो दूसरा काट ले गये थे बहुत पहले ।

□ पीपल - दो

कृष्ण ने कहा था
मैं जीवित रहूँगा अश्वत्थ की घनता में
मुझे पाने के लिए
उसके पास आना होगा।

सचेत हो
देखती रहीं सदियाँ
उसकी चपल चंचलता में जुड़ाने
कोई नहीं आया
कभी नहीं आया

उसके पास बादल थे, किरणें थीं
गाते हुए पक्षी थे
कामधेनुएँ थीं हंस का मुकुट था
भोर थी, शाम थी
अमावस्या थी पूर्णिमा थी
कृष्ण की गरिमा थी

दोपहरी नहीं थी वहाँ
और सब छाया से बच रहे थे
अपनी भी छाया कहाँ थी उनके पास ?

पक्षी की तरह
वह उठा लेता था सूरज को
अपने विशाल पंखों पर
बिछा देता पत्तों का बिछौना
थके हारे ढोरों के लिए

लेकिन वहाँ कोई नहीं आया
सब आने की बात करते थे
लेकिन कृष्ण से डरते थे

जो आये
वे पत्तों को उतार
निर्वस्त्र कर देना चाहते थे उसे
सोख लेना चाहते थे
कंधे पर सोये बादलों का सारा जल

तुम गये
पहली बार अँकवार में भरने उसे

वह खिलखिलाता हुआ
तुम्हारी रग-रग में बहने लगा
अपनी कहने लगा
तुम्हारी सुनने लगा

भर दिया आँचल में तुम्हारे
रसीले बादलों का घुमड़ना, रात भर की चाँदनी
ओस की बूँदें
धूप की माला
और पहना दिया चाँदी का सरोपा ।

□ पीपल : एक

□ अरुणेश नीरन

इतने दिनों से
वह एक बाँह से आसमान उठाये
वहाँ चुपचाप खड़ा था

दूसरी बाँह काट ले गये थे सैनिक
जो अपने गर्वीले हाथियों के साथ
बहुत पहले आये थे

घने-काले हँसते हुए बादल
उतरते थे
मजबूत कंधों पर कभी
बाँहों में बाँध लेता था चाँदनी
धूप में वह पहन लेता
चाँदी का सरोपा

स्त्रियाँ आती थीं भिनसारे
रंग-बिरंगे सूत से लपेट कर बनाती थीं
रंग की भँवर
और अच्छत की भँवरी चढ़ा
चली जातीं घरों को बिना जाने
कि किस पक्षी के हिस्से में आयेंगे दाने
कहाँ गिरायेगी जल की वह धार
जो बूँद-बूँद पी रहा था तुम्हें

कभी
घनी छतनार छाया में
दुहाती थीं कामधेनुएँ
गूँजती थी कच्ची हँसी ढोरवाहे बालकों की
खिलखिलाते पक्षियों के साथ

गेरुवा मौसम
बरसाता था अंगार
और जलने लगता था चराचर
पिघल कर फूल
बहने लगते थे लौहनलियों में

जल रहे थे जंगल
घर, सड़कें और तपोवन
उन्हें बचाने वाला कोई नहीं था
सब भाग रहे थे
अपनी-अपनी लपटों से घिरे

न हाथी थे, न घोड़े
न कुल्हाड़ी, न रस्सियाँ
अब वहाँ कुछ भी नहीं था
अपनी सलवटों को सँवारती पृथ्वी थी
बरस रहे थे
अनगिनत धूप के कोड़े

विस्फोटित पत्थर काँपते थर-थर
गर्भ से फूट रहा अंकुर
जल में कमल-सा मन

सभी सरहदों को तोड़ते
नदी-सागर-पर्वत हर जगह हर कहीं
धूप के सारे परगनों को
गहरी-गुफा में घेरते

छायाभास-से नूतन नगर को
स्वर्ण-मेखला हाथों में उठाये
खींच लाते
विकल विमान की कामना के
अनन्त आकाश की
शोक-छाया ।

□□

देवरिया खास
देवरिया-274001.